IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारत में जाति का दुष्चक्र : समस्या एवं समाधान

डॉ. किरण झा
असिस्टेंट प्रोफेसर
विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

सुभाष चन्द्र सामन्त
शोधार्थी,
राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

सारांश :

भारत एक विचित्र प्रकार के दुष्चक्र से बाहर नहीं निकल पा रहा है और वह है जाति। शायद इस दुष्चक्र से बाहर निकलने के उतने सार्थक प्रयास भी नहीं हो रहे हैं जितने होने चाहिए। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने बढ़ती शहरीकरण से जातीय शिथिलता की कल्पना की थी, परन्तु शहरीकरण भी इस कुचक्र से बाहर निकलने में नाकाफी साबित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के बाह्य पक्षों में बदलाव के बावजूद मानसिक जड़ता में जाति का प्रभाव मजबूती के साथ बना हुआ है। हमें अब अपने कदम उस दिशा में बढ़ाने की जरूरत है जहाँ राजनीतिक लाभ–हानि के कारण जाति का खात्मा न भी हो, परन्तु सामाजिक प्रयासों एवं श्रम विभाजनों में बदलाव करके जातीय श्रेष्टता बोध को अवश्य खत्म किया जा सके। जातीय श्रेष्टता के नाम पर शर्मसार करने वाली अनेक घटनाओं से हिन्दुस्तान की आत्मा कराहते रही है। कबीर, नानक, रैदास, तुलसीदास, दादू, रज्जब, नामदेव और चैतन्य महाप्रभु जैसे संतो ने हिन्दु समाज के जातीय भेदभाव पर करारा प्रहार किया। आधुनिक भारत में गांधी, अम्बेडकर और लोहिया जैसे विचारकों ने इस कुचक्र को तोड़ने के सार्थक प्रयास किये, परन्तु अभी तक आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

कूटशब्द : जाति, मानसिक जड़ता, श्रम विभाजन, जातीय श्रेष्टता बोध, आरक्षण, असमानता, भावनात्मक मुद्दे, समाधान एवं सुझाव।

भारत विविधता से परिपूर्ण देश है, ''विविधता में एकता'' भारतीय समाज की महत्वपूर्ण विशेषता है। परंतु हमारे देश में दो तरह की राजनीति निरंतर चलते रहती है, विभाजन की राजनीति और एकता की राजनीति, राजनीतिज्ञ वोट बटोरने के चक्कर में मतदाताओं को और छोटे समूहों में बाँटते जा रहे हैं। देश आजाद हुए 75 वर्ष हो गए, परंतु अभी भी देश के अंदर दर्जनों जातीय संघर्ष और अलगाववादी आंदोलन जारी है। एक ओर जहाँ भाषा के आधार पर उत्तर–दक्षिण, पूरब–पश्चिम भारतीय बँटे हुए नजर आते हैं। वहीं दूसरी ओर अनेक बार पूर्वोत्तर भारतीयों को नस्लीय भेदभाव का सामना करना पड़ता है। कुछ राज्यों के लोग समूचे जातीय समुदायों को बाहर करने का प्रयास कर चुके हैं जैसे कि कश्मीर से पंडित, असम से बंगाली। हर जातीय समूह आरक्षण या अन्य वित्तीय अनुदान या सरकार से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के चक्कर में अन्य जातीय समूहों से टकराव की स्थिति में है। देश के अंदर लगभग सभी

राज्यों में आरक्षण, भाषा, जाति, धर्म जैसे मुद्दों पर अनेक समूह आपस में लड़ते रहते है। समस्या यह है कि भारत ने अपनी विविधता के प्रबंधन के लिए कभी भी एक उचित व्यवस्था विकसित ही नहीं की। अव्यवस्थित सोच ने समुदायों में केवल साम्प्रदायिकता, तुष्टिकरण, हिंसा और अलगाव की भावना को बढ़ावा दिया है।[1]

दुनिया के सभी देशों में अलग–अलग तरह की असमानताएँ व्याप्त है। लेकिन भारत में घातक विभाजनों और विषमताओं का ऐसा घालमेल है जो अपनी तरह का अकेला है। कम ही देश ऐसे होंगें, जिन्हें भारी आर्थिक असमानता के साथ–साथ जाति, वर्ग और लिंग समेत इतनी तरह की घोर विषमताओं का सामना करना पड़ता होगा। भारत में जाति की विचित्र भूमिका है जो इसे बाकी पूरी दुनिया से अलग करती है। बेशक कई देशों में अतीत में और कुछ हद तक आज भी जाति जैसी संस्था रही है जिसने लोगों को खाँचों में बाँट रखा है, लेकिन भारत में जातिगत भेदभाव अनूठा है।[2]

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति चाहे जैसी हुई हो इसने बीती शताब्दियों पर असली अमंगलकारी परछाई डाली है और देश के भविष्य को भी अंधकारमय बनाने का खतरा पैदा कर रही है। वर्त्तमान में जाति समाज में बिखराव पैदा करने वाली मुख्य शक्ति बन गयी है। आजाद भारत में हुए अनेक घटनाओं से स्पष्ट होता है कि भारत में जातीप्रथा और साम्प्रादायिकता ने कितना विकराल रूप ले लिया है।

1977 में बिहार के पटना के निकट बेलछी की घटना जिसमें 14 दलितों की हत्या कर दी गई थी। भोजपुर जिले के देवार–बिहटा गांव में 1978 ई. में अगड़ी जाति के लोगों ने 22 दलितों की निर्ममता के साथ हत्या कर दी थी। 1980 में पटना के निकट पिपरा गांव में पिछड़ी जाति के दबंगों के द्वारा 14 दलितों की हत्या कर दी गई। औरंगाबाद जिले के देलेलचक भगौरा गाँव में 1987 की घटना जिसमें जातीय संघर्ष में 52 लोगों को एक साथ मौत के घाट उतार दिया गया। 1989 में जहानाबाद के नोही नागवान गाँव में 18 लोगों की हत्या ने भी बिहार को हिला दिया था। 1992 में गया जिले के बारा गाँव में भूमिहार जाति के 35 लोगों की हत्या, वर्ष 1996 में भोजपुर के बथानी टोला गाँव में दलित, मुस्लिम और पिछड़ी जाति के 22 लोगों की हत्या, 1999 में जहानाबाद के सेनारी गांव में अगड़ी जाति के 35 लोगों की सामूहिक हत्या, औरंगाबाद जिले के मियांपुर गांव में जून 2000 को 35 दलितों की सामूहिक हत्या[3], ये सभी घटनायें बिहार में जातीय संघर्ष के काला अध्याय है। झारखण्ड में भी कुड़मी/कुरमी जाति के द्वारा अनुसूचित जनजाति सूची में शामिल करने को लेकर आंदोलन जारी है। इस मांग ने पूर्व से अनुसूचित जनजाति में शामिल समुदायों के साथ संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी है। समय–समय पर महाराष्ट्र में मराठा, गुजरात में पाटीदार, हरियाणा में जाट राजस्थान में गुर्जर, आंध्र प्रदेश और तेलांगना में कापू समुदायों के द्वारा आरक्षण की मांग होते रही है।

जातीय संघर्ष का ताजा उदाहरण मणिपुर का है। जिसमें मैतेई और कुकी जातीय समूह के संघर्ष में लगभग अब तक 73 से अधिक लोग मारे जा चुके है।[4] शुरू से ही आरक्षण का राजनीतिक मकसदों से दोहन किया जा रहा था, इसलिए धीरे–धीरे इस नीति में विकृतियां आती चली गई। इन्हीं सब कारणों से खूबियों के बावजूद आरक्षण की नीति एक त्रासदी में बदल चुकी है। मणिपुर का तनाव दूसरे राज्यों और राजनीतिक दलों के लिए एक सबक की तरह होना चाहिए। जो पार्टियों आरक्षण की राजनीति में अपना लाभ देखती है, उन्हें सतर्क हो जाना चाहिए। आरक्षण केवल राजनीति का विषय नहीं है, यह लाखों करोड़ों वंचितों लोगों को समाज के मुख्यधारा में जोड़ने का एक सकारात्मक प्रयास है, परन्तु शर्त यह है कि आरक्षण को राजनीतिक दाँव–पेंच के अखाड़े में न उलझाकर ईमानदारीपूर्वक व्यापक स्तर पर समय–समय पर इसकी समीक्षा होती रहे, जिसके लिए जातीय जनगणना का उपयोग एक साधन के रूप में किया जा सकता है।

लेकिन दुर्भाग्य है कि ज्यादतर राजनीतिक दलों के लिए यह एक आसान भावनात्मक मुद्दा होता है। राजनीतिक खेल में जिन लोगों को मुख्य मुद्दो से भटकाकर भावनात्मक समर्थन की आवश्यकता होती है। वे भेदभावों और बँटवारे का मसला छेड़ देते है। सारे गड़े मुर्दे उखाड़कर भावनाएँ भड़काई जाती है। सत्ता के खेल में जाति सबसे लाभदायक उपकरण बन गयी है। वंचित जातियों को सामाजिक न्याय की प्राप्ति तभी होगी, जब पिछड़ी जातियों की आर्थिक स्थिति को बेहतर किया जाए। जातिगत भेदभाव दूर करने का यह तरीका किसी भी जाति में नाराजगी पैदा नहीं करेगा और जहाँ तक संभव हो इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। अक्सर वंचित जाति के लोगों का अपमान उनकी दरिद्रता के चलते कई गुना बढ़ जाता है।[5] यह सामान्य अनुभव भी रहा है कि जिन उपेक्षित जातियों की आर्थिक स्थिति बेहतर होते गई समाज में भी उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई।

अपनी किताब 'जाति का विनाश' में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने भारत की जातिवादी मानसिकता के संदर्भ में लिखा है कि आर्थिक या औद्योगिक विकास से अधिक महत्व सामाजिक स्थिति का है, जो शक्ति और सत्ता का स्रोत बन जाती है। यही कारण है कि बड़े–बड़े करोड़पति और नेता फूटी–कौड़ी न रखने वाले साधुओं, फकीरों और अन्य धार्मिक गुरूओं के दरबार में हाजिरी लगाते नजर आते हैं। असमानता और जाति की चर्चा करते हुए थॉमस पिकेटी ने भी अपनी पुस्तक 'कैपिटल एंड आइडियोलॉजी' में भारत में असमानता उत्पन्न करने में जाति की अहम भूमिका को स्वीकार किया है।[6]

जनसाधरण के मस्तिष्क में समाज के अंदर जाति और धार्मिक मान्यताओं को लेकर एक विचित्र किस्म का लगाव और प्रभाव है, जो किसी भी तार्किकता और वैज्ञानिकता पर आधारित नहीं है। यह घोर आश्चर्य का विषय प्रतीत होता है कि चाँद और मंगल तक की यात्रा करने के बावजूद अधिकांश भारतीयों का सड़ा हुआ मानसिक अवस्था जाति के घिनौने विचार से बाहर नहीं निकल पाता है। देश के तीर्थस्थलों की साफ–सफाई, बारिश के दिनों में नालियों का प्रबंधन, सड़कों एवं शहरों में कचरा प्रबंधन, सार्वजनिक स्थलों जैसे अस्पतालों, विश्वविद्यालयों, सामुदायिक भवनों, नदियों, तालाबों इत्यादि को साफ रखने की प्रवृत्ति भले ही विकसित न हो सकी हो, परन्तु कट्टर जातीय भावना लगातार विकसित होती जाती है। तार्किकता, वैज्ञानिक सोच, तकनीकी, विज्ञान, नवाचार, कृषि एवं अनाज प्रबंधन, शिक्षा, चिकित्सा एवं पर्यावरणीय समस्या हिन्दुस्तानियों के जनमानस को उतने प्रभावित नहीं कर पाते हैं जितने जाति और धर्म जैसे भावनात्मक मुद्दे आसानी से प्रभावित करते हैं।

लोहिया भारत की सामाजिक संरचना की विविधता से भलीभांति परिचित थे। वे उन सामाजिक विसंगतियों से परिचित थे जो भारतीय समाज में विसंगतियाँ पैदा करते है। इस स्थिति में उनका बयान मजेदार है कि एक अच्छी दुनिया तभी बनेगी, जब मानव जाति वर्ण–संकर हो जाएगी तथा राष्ट्र नस्ल, रंग अथवा ऐसी ही किसी विभाजन से मुक्त हो जाएगी।[7]

<u>सामाजिक समरसता बढ़ाने के सुझाव :</u>

- चुनावों के दौरान जाति और धर्म के नाम पर वोट माँगने वाले नेताओं को कम से कम छः वर्ष के लिए चुनाव लड़ने से प्रतिबंध कर दिया जाए और पार्टी सदस्यता से अविलंब निलंबित किया जाना चाहिए।
- देश के किसी भी कोने में सार्वजनिक मंचो से विभाजनकारी और भड़काऊ भाषण देने वाले धार्मिक गुरूओं को कानूनसम्मत कार्रवाई करते हुए तुरंत जेल में डाला जाना चाहिए।
- शोसल मीडिया के प्रत्येक ऐसे प्लेटफॉर्म को जो नफरत फैलाने का काम करते है, उन पर तकनीकी सहायता से कार्रवाई करते हुए कम से कम दो वर्ष के लिए शोसल मीडिया के प्रयोग करने से वंचित कर दिया जाए।

- सरकारी और निजी क्षेत्रों के नौकरियों में अंतरजातीय विवाह, करने वालों को प्राथमिकता दिया जाए साथ ही अंतरजातीय विवाह करने वाली स्त्रियां को आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से विशेष अवसर की व्यवस्था किए जाने की आश्यकता है।
- देश में प्रत्येक वर्ष एक अंर्तधार्मिक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हो जिसमें सभी धर्मों के मूलभूत ज्ञान रखने वाले धार्मिक गुरू उपस्थित होंगे। यह कार्यक्रम राष्ट्रीय सरकार के द्वारा प्रायोजित की जानी चाहिए।
- हमें क्षेत्रीय और जातीय पहचान के स्थान पर भारतीय पहचान को प्राथमिक देनी होगी।
- श्रम विभाजनों में उस सीमा तक बदलाव होना चाहिए, जिसमें धार्मिक कर्मकांड करानेवाले, कृषि कार्य करने वाले, मजदूरी का कार्य करने वाले एवं साफ–सफाई का कार्य करने वालों के बीच कोई विशिष्ट पहचान बची हुई न रहे।
- सामाजिक वंचना के शिकार लोगों के अंदर आत्मविश्वास जगाने के लिए आर्थिक सशक्तिकरण की क्षमता विकसित करना अतिआवश्यक है ताकि धीरे–धीरे उनके अंदर आत्मसम्मान की भावना जागृत हो सके।
- हमें धार्मिक एवं पौराणिक पुस्तकों को अपनी विरासत के रूप में जाँच–परखकर एवं तार्किकता के साथ अपनाये जाने की जरूरत हैं। कई बार धर्म की आड़ में कट्टरता, पोंगापंथीं, पाखण्ड और साम्प्रदायिक ताकतों के चंगुल में फंसते चले जाते हैं, बदलती परिस्थितियों के अनुरूप धार्मिक पुस्तकों को भी तर्कसंगत दृष्टिकोण से बहस का हिस्सा बनाया जाये और ऊँच–नीच एवं भेदभाव उत्पन्न करने वाली तथ्यों की खोज कर उनमें निश्चित रूप से बदलाव किया जाना चाहिए।
- महिलाओं की अधिकतम आत्मनिर्भरता और आजादी जाति व्यवस्था की बेडियों को तोड़ने में सक्षम है। जब महिलायें सशक्त हो जायेंगी तो अपने जीवन साथी चुनने में अधिक अधिकारों का प्रयोग करेंगी और निर्णय लेने की प्रक्रिया में अपने बेहतर जीवन के लिए दकियानूसी सामाजिक बंधनों के बजाय निश्चित रूप से वे आर्थिक तत्व को ध्यान में रखकर निर्णय लेंगी।

संदर्भ :

1. https://www.divyahimachal.com/2017/09/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A7%E0%A4%A4%E0%A4%BE-%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82-%E0%A4%8F%E0%A4%95%E0%A4%A4%E0%A4%BE-%E0%A4%AC%E0%A4%9A%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%87/
2. ज्यां द्रेज और अमर्त्य सेन, 2020 (पाँचवा संस्करण), भारत और उसके विरोधाभास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–217
3. https://www.aajtak.in/elections/bihar-assembly-elections/photo/bihar-caste-based-massacre-is-always-a-election-issue-bihar-election-tstb-1151955-2020-10-26
4. दैनिक भास्कर, (राँची संस्करण), 23/05/2023
5. सच्चिदानंद सिन्हा, 2006, जाति व्यवस्था, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–220–221
6. सत्येन्द्र प्रताप सिंह, 2023, जाति का चक्रव्यूह और आरक्षण, राज्यपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, पृष्ट संख्या–218
7. डॉ. कन्हैया त्रिपाठी, 2014, डॉ. राममनोहर लोहिया और सतत समाजवाद, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–135

IJCRT